निकोलाई तेलेशोव

घर की ललक

निकोलाई तेलेशोव ने लंबी उम्र पाई। उनका जन्म १८६७ में हुआ — रूस में भूदास प्रथा खत्म किए जाने के केवल छह बरस बाद और मृत्यु १९५७ में हुई, जब महान अक्तूबर क्रांति हुए चालीस वर्ष बीत चुके थे।

युवावस्था में तेलेशोव ने ज्ञान प्रसार का काम किया। वह बच्चों के लिए कहानियों और कविताओं के संग्रह छापते थे, मास्को के पास ही एक स्कूल उन्होंने खोला। १८९४ में चेखोव के परामर्श पर तेलेशोव ने साइबेरिया की यात्रा की, ताकि जनता के जीवन को अच्छी तरह देख जान सकें।

उन दिनों ज़ार की सरकार रूस के यूरोपीय भाग के ग़रीब किसानों को साइबेरिया के निर्जन इलाक़ों में बसा रही थी। उराल पार के क्षेत्र में रेल लाइनें न के बराबर ही थीं। किसान अपने परिवारों के साथ घोड़ागाड़ियों पर यात्रा करते थे। लंबे रास्ते में वे भूखे रहते थे, रोगों के शिकार होते थे, ठंड से मरते थे, बच्चे अनाथ हो जाते थे, मां-बाप बच्चों के बिना रह जाते थे। साइबेरिया के केंद्रीय भाग में तेलेशोव ने बहुत सी ऐसी बैरकें देखीं, जो इन किसानों के बेघरबार हो गए बच्चों से भरी हुई थीं। साइबेरिया से लौटने पर तेलेशोव ने लिखा: "इन बच्चों के माता-पिता या तो रास्ते में मर गए, या फिर बाक़ी परिवार को कंगाली और भूख से बचाने की कोशिश में अपने बच्चे को, जिसके बचने की उन्हें कोई उम्मीद न थी, छोड़कर आगे बढ़ गए। उनके पास न इतनी शक्ति है, न इतना पैसा ही कि वे रुककर बच्चे के मर जाने का इंतज़ार करें और वे उसे मरा हुआ ही मानकर आगे बढ़ जाते हैं। बेशक, इस तरह छोड़े गए अधिकांश बच्चे बीमारी से ठीक नहीं हो पाते, पर ऐसा भी होता है कि बच्चे की हालत सुधर जाती है और फिर वह 'ख़ुदाई औलाद' बन जाता है।"

तेलेशोव की सबसे अच्छी कहानियां इन अभागे बच्चों के बारे में ही हैं। मां-बाप बीमार निकोला को छोड़कर चले गए, वह ठीक हो गया और किसी का नहीं रह गया — यह है 'ग़रीबी' कहानी। 'नया साल' कहानी में लेखक ने यह बताया है कि किस तरह बूढ़े सिपाही मीत्रिच को इन अभागे बच्चों पर तरस आता है और वह अपना पेट काटकर उनके लिए नए साल पर त्योहार मनाने का प्रबन्ध करता है। १८९६ में प्रकाशित 'घर की ललक' ऐसे बालक की कहानी है, जो साइबेरिया जाते हुए अनाथ हो गया और वापस घर लौटने की कोशिश करता है।

(१)

गर्मियों की उजली रात थी। चांदनी में जीवन की उमंग थी और सहज शांति : खेतों-मैदानों और सड़कों पर वह चांदी बरसा रही थी, जंगल को अपनी किरणों से बींध रही थी और नदियों में सोना घोल रही थी... इसी रात को बैरक के दरवाज़े में से दस-ग्यारह बरस का, घुंघराले बालों और पीले चेहरे वाला एक लड़का – स्योम्का चुपके-चुपके बाहर निकला। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, छाती पर सलीब का निशान बनाया और सहसा सिर पर पैर रखकर उस मैदान की ओर दौड़ा, जहां से "रूस की सड़क" शुरू होती थी। लड़के को डर था कि उसका पीछा किया जाएगा, इसलिए वह बार-बार मुड़कर देख रहा था, लेकिन कोई उसके पीछे नहीं दौड़ रहा था। लड़का सही-सलामत पहले मैदान तक और फिर बड़ी सड़क तक पहुंच गया। यहां पर वह रुका, थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा और फिर धीरे-धीरे सड़क के किनारे-किनारे चलने लगा।

वह उन बेघरबार बच्चों में से एक था, जो साइबेरिया में बसाए जा रहे किसानों के पीछे अनाथ रह जाते हैं। उसके मां-बाप रास्ते में टाइफ़ायड से मर गए थे और स्योम्का बेगाने लोगों के बीच अकेला रह गया था। यहां की प्रकृति भी उसकी जन्मभूमि से बिल्कुल अलग थी। उसे याद था कि उसकी जन्मभूमि में पत्थर का सफ़ेद गिरजा है, पवन-चक्कियां हैं, उज़्यूप्का नदी है, जहां वह अपने दोस्तों के साथ नहाया करता था और बेलये (सफ़ेद) नाम का गांव है। परंतु यह जन्मभूमि, वह गांव और नदी कहां हैं, यह सब उसके लिए उतना ही बड़ा रहस्य था, जितना कि वह स्थान, जहां पर अब वह था। उसे बस एक बात याद थी कि वे यहां इसी सड़क पर आए थे और इससे पहले उन्होंने एक बहुत बड़ी नदी पार की थी और उससे भी पहले कई दिनों तक स्टीमर पर यात्रा की थी, फिर रेलगाड़ी पर, फिर स्टीमर और रेलगाड़ी पर। उसे लगता था कि वह बस यह सड़क का फ़ासला तय कर ले, तो फिर नदी आएगी, उसके बाद रेलगाड़ी होगी और फिर बस उज़्यूप्का नदी और बेलये गांव आ जाएगा और उसका अपना घर, जहां वह जन्मा और बड़ा हुआ, जिसके बिना वह नहीं रह सकता, जहां वह सभी बूढ़ों और लड़कों को जानता है। उसे यह भी याद था कि कैसे उसके मां-बाप मरे थे, कैसे लोगों ने उन्हें ताबूत में रखकर पेड़ों के झुरमुट के पीछे किसी अनजान कब्रिस्तान में दफ़ना दिया था। स्योम्का को यह भी याद था कि कैसे वह रोता रहा था और उसे घर भेज देने को कहता रहा था, मगर उसे यहां बैरक में रहने पर मजबूर किया गया। यहां उसे रोटी और बंदगोभी का सूप 'श्ची' मिलता था और हमेशा कहा जाता था: "जा, जा, तेरे बिना यहां क्या कम काम है"। यहां तक कि बड़ा साहब अलेक्सान्द्र याकव्लेविच, जो सब पर हुक्म चलाता था, उस पर बरस पड़ा था और बोला था – चुपके से रहे जाओ, ज़्यादा तंग करोगे, तो बाल नोच डालूंगा। और स्योम्का मन मसोसकर वहां रह रहा था। उसके साथ बैरक में तीन लड़कियां और एक लड़का और थे, जिन्हें उनके मां-बाप यहां भूल गए थे और पता नहीं कहां चले गए थे, पर वे बच्चे इतने छोटे थे कि स्योम्का ने उनके साथ खेल सकता था न शरारतें कर सकता था।

एक के बाद एक दिन और हफ़्ते गुज़रते रहे और स्योम्का इस घिनौनी बैरक में रहता रहा, कहीं जाने का साहस वह नहीं कर पाता था। पर आखिर वह तंग आ गया। वह तो रही सड़क, जिस पर वे रूस से यहां आए थे। अच्छी तरह से नहीं जाने देते तो ठीक है, वह भाग जाएगा। कौन सी कोई बहुत देर की बात है? और वह फिर से अपनी नदी उज्यूप्का, अपना गांव बेलये देखेगा और अपने पक्के यारों से मिलेगा, मास्टरनी अफ़ोसिन्या येगोरव्ना के पास जाएगा और पादरी के लौंडों के पास, जिनके घर पर बहुत सारे चैरी और सेब के पेड़ हैं।

पकड़े जाने का डर स्योम्का को कई दिनों तक रोके रहा, परंतु अपनी नदी, अपने जन्म के गांव, अपने हमजोलियों को देखने की आशा इतनी प्रबल थी कि स्योम्का ने मन में यह सपना संजोकर मौक़ा देखा और सदा के लिए फोकट के खाने को लात मारकर सड़क पर भाग आया। अब वह बहुत खुश था कि घर लौट रहा है। उसे लगता था कि बेलये जैसी अच्छी जगह और कहीं नहीं और सारी दुनिया में उज्यूप्का जैसी कोई नदी नहीं है।

चांद क्षितिज पर पहुंच रहा था, पौ फट रही थी, पर स्योम्का चलता जा रहा था, ताज़ी, ओस से भीगी हवा में सांस लेता हुआ और इस बात पर खुश होता हुआ कि हर क़दम उसे घर के पास ले जा रहा है।

(२)

लगता है कि इन्सान के लिए जिस किसी बात की भी कल्पना की जा सकती है, वह सब असीम साइबेरिया ने देखा और अनुभव किया है और उसे किसी बात पर आश्र्य नहीं हो सकता। इसके रास्तों पर बेड़ियों में बंद क़ैदियों ने हज़ारों मील पार किए हैं—भारी जंजीरें खनखनाते हुए, इसके गर्भ की अंधेरी खानों में उन्होंने खुदाई की है, इसकी सड़कों पर घुंघरुओं की झंकार के साथ त्रोइका गाड़ियां हवा से बातें करती चलती हैं और इसके घने जंगलों में भगोड़े क़ैदी भटकते-फिरते हैं, जानवरों से जूझते हैं और कभी बस्तियां जला डालते हैं, तो कभी ईसा के नाम पर रोटी का टुकड़ा मांगकर पेट भरते हैं;

रूस से यहां बसने आनेवालों का तांता लगा रहता है, उनके क़ाफ़िले अपनी गाड़ियों तले रात काटते हैं, अलाव के पास बैठकर आग सेंकते हैं, उधर उनके सामने से, उल्टी दिशा में भी झुंड के झुंड कंगाल हो गए, भूखे, नंगे, बीमार लोग बढ़ते जाते हैं, और न जाने कितने रास्ते में मौत का निवाला बनते हैं, पर यहां किसी के लिए कुछ नया नहीं है।

साइबेरिया ने इतना ज़्यादा पराया दर्द देखा है कि अब आश्चर्य की कोई बात नहीं रह गई। जब स्योम्का किसी गांव या बस्ती से गुज़रता हुआ पूछता: "रूस को कौन सी सड़क जाती है?", तो इसपर भी किसी को कोई हैरानी न होती।

"यहां सब रास्ते रूस को जाते है," उसे सीधा सा जवाब मिलता और जवाब देनेवाला सड़क की ओर इशारा कर देता, मानो उसकी दिशा दिखा रहा हो।

स्योम्का चलता जा रहा था, वह न थकावट महसूस कर रहा था, न उसके मन में डर था: वह अपनी आज़ादी पर ख़ुश था, रंग-बिरंगे फूलों वाले मैदान और डाक वाली त्रोइका गाड़ी की घंटियों की टुन-टुन उसके मन में उमंगें भरती थी। कभी-कभी वह घास पर लेट जाता था और जंगली गुलाब की झाड़ी तले गहरी नींद में सो जाता था या जब गर्मी ज़्यादा होती तो सड़क किनारे के किसी कुंज में बैठ लेता। उदारमना साइबेरियाई औरतें उसे रोटी और दूध दे देती थीं और सड़क पर जाते किसान कभी-कभी उसे अपनी घोड़ागाड़ी पर बिठा लेते थे।

"बाबा, गाड़ी में बिठा लो, दया करो!" पास से कोई घोड़ागाड़ी गुज़रती, तो स्योम्का मिन्नत करता।

"माई, रोटी दे दे," गांवों में वह औरतों से मांगता था।

सब को उसपर दया आती थी और स्योम्का का पेट भरा रहता था।

(३)

दो हफ़्ते बीत गए।

स्योम्का कई रास्ते और गांव पीछे छोड़ चुका था। वह हिम्मत नहीं

हारा था, आराम से चलता जा रहा था। हां, कभी-कभार वह लोगों से पूछ लेता था :

"रूस अभी दूर है?"

"रूस? हां, पास नहीं है। चलते जाओ, जाड़ों तक पहुंच जाओगे, या शायद कुछ पहले ही।"

"और जाड़ा जल्दी ही आनेवाला है क्या?"

"नहीं, जाड़ा आने में अभी देर है। अभी तो पतझड़ भी नहीं आया।"

स्योम्का जब किसी गांव से गुज़रता, या जब उसे दूर से ही गिरजे का ऊंचा सफ़ेद घंटाघर और उसके ऊपर सुनहरी सलीब दिखाई दे जाता, तो उसकी आंखों में आंसू आ जाते, मन में ख़ुशी उमड़ती। वह टोपी उतार लेता, घुटनों के बल गिर पड़ता और रोते हुए प्रार्थना करता :

"हे, प्रभु, जल्दी से जाड़ा आ जाए!"

कभी-कभी स्योम्का को सड़क के किनारे लकड़ी का सलीब लगा दिखाई देता; आस-पास कोई घर नहीं, कहीं पहरेदार की कोठरी तक नहीं, बस एक ओर जंगल तथा दूसरी ओर स्तेपी ही होती।

ऐसा सलीब देखकर स्योम्का सोच में पड़ जाता, हर बार उसे अपने मां-बाप की याद आ जाती, खुले मैदान में लगा तम्बू याद हो आता, जिसमें वे मरे थे, और स्योम्का सारी थकावट भूल-भालकर, तेज़ क़दम भरने लगता। उसके मुंह पर बस एक ही शब्द होता :

"घर! घर!"

लो, आखिर एक शहर आ गया...

चुंगी चौकी से आगे स्योम्का को दाएं-बाएं लट्ठों के घर दिखाई दे रहे थे। मटमैले घरों की छतें हरी, लाल या सुरमई थीं। आगे पत्थर के सफ़ेद मकान थे। गलियों में मुर्गियां घूम रही थीं, सूअर घुरघुरा रहे थे। फिर ऊंची बाड़ों और हरे-भरे अहातों का क्रम चला, डाक-चौकी के पास काली-सफ़ेद धारियों वाले मील-खंभे लगे हुए थे। खुले चौक में लोहे के जंगले के पीछे ऊंचा घंटाघर था और उसके बिल्कुल सामने लट्ठों का पतला सा बुर्ज था, उसके ऊपर एक

सिपाही चक्कर काट रहा था और आगे फिर शहर की चौकी की बुर्जियां दिखाई देने लगी थीं।

स्योम्का बिना रुके ही शहर से होता हुआ निकल गया और फिर से खुली सड़क पर पहुंच गया। यहां वह निश्शंक होकर अपनी धुन में मस्त चलता जा सकता था।

(४)

ज्यों-ज्यों स्योम्का दूर जाता जा रहा था, त्यों-त्यों उसे चारों ओर शरद ऋतु के आने की अधिक निशानियां दिख रही थीं। "कोई बात नहीं। जल्दी ही जाड़ा आ जाएगा," – स्योम्का के मन में आता और उसे लगता कि बस उसका गांव अब पास ही आता जा रहा है। खेतों में रंग-बिरंगी तितलियां नहीं फड़फड़ा रही थीं, टिड्डे नहीं फुदक रहे थे, पेड़ों की पत्तियां झड़ने लगी थीं, घास मुरझाने लगी थी, आसमान पर अक्सर झीने-झीने सुरमई बादल छा जाते थे और रातें भी ठंडी हो गई थीं।

पर स्योम्का सोचता था: "अब तो थोड़ी ही दूर है। बस अब जल्दी ही घर पहुंच जाऊंगा।" स्योम्का सड़क पर चलता जा रहा था। भूख उसे सता रही थी। सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था।

झाड़ियों में एक आदमी पालथी मारकर बैठा कुछ चबा रहा था। उसे देखकर स्योम्का थम गया। वह ईर्ष्या भरी नज़रों से यह देख रहा था कि कैसे वह आदमी अंडा छीलकर दांतों से काट रहा था और ऊपर से रोटी खा रहा था।

"क्या चाहिए तुझे?" उस आदमी ने पूछा। वह न उठा और न उसने चबाना ही बंद किया।

स्योम्का चुपचाप खड़ा था।

वह आदमी जवान न था। चेहरे पर छोटी सी खिचड़ी दाढ़ी थी, आंखें संकरी और धंसी हुई, मुंह की चमड़ी सांवली पड़ गई थी और खुश्क हवाओं से फट गई थी। पैरों में वह नमदे के जूते पहने हुए था, कंधे पर भड़कीले रंग का कोट और सिर पर टोप।

"क्या चाहिए तुझे?" स्योम्का की ओर ग़ौर से देखते हुए उसने फिर से पूछा।

"बाबा," स्योम्का डरते-डरते बोला, "ईसा के नाम पर थोड़ी सी रोटी दे दो..."

"अरे भैया, यहां तो ख़ुद भले लोगों से मांगी है... पर ख़ैर ले, बांट लेते हैं।" उसने रोटी का टुकड़ा बढ़ा दिया और फिर पूछा: "किसका है तू? कहां से आ टपका?"

"घर जा रहा हूं... रूस में।"

"रूस? मैं भी रूस जा रहा हूं। तू काहे को जा रहा है?"

स्योम्का उसे अपनी सारी कहानी सुनाने लगा। वह बता रहा था कि उसे बैरक में कितनी ऊब होती थी, कैसे उसका मन घर जाने को होता था और कैसे वह रात को भागा। बूढ़ा उसकी बातें सुनता जा रहा था और यों सिर हिला रहा था, मानो किसी बात पर उसकी प्रशंसा कर रहा हो।

"शाबाश, बेटे!" स्योम्का का हाथ थपथपाते हुए बूढ़े ने कहा। "पर ज़िंदगी तेरी ख़राब ही होगी। लगता है मेरे ही क़दमों पर चलेगा: न तुझे घर देखने को मिलेगा, न तेरा कोई ठौर-ठिकाना होगा... कुत्तों की सी ज़िंदगी... बिल्कुल कुत्तों की ही!"

"बाबा, तुम कौन हो?" स्योम्का ने बड़ी दिलचस्पी से पूछा और बूढ़े के सामने बैठ गया।

"मैं कौन हूं? कुछ भी नहीं... बस, यों ही... एक अनजान बुड्ढा।"

बूढ़े ने गहरी सांस ली और मुंह पर हाथ फेरा, मानो चेहरा पोंछ रहा हो।

"हां, भैया... है तो तू छोटा सा ही, पर देख तुझे भी घर की ललक वापस खींच रही है। बस, सदा यही होता है, घर न हुआ, सगी मां हुई... ऐसी ललक है, खींचे जाती है, खींचे जाती है... इसके बिना कहीं चैन नहीं। एक बार जाके उसे नज़र भर देख लिया, बस मन को राहत मिल गई।"

"अच्छा तो, बाबा, मैं जाड़ों तक पहुंच जाऊंगा रूस कि नहीं?"

"नहीं, नहीं पहुंच पाएगा। क्योंकि अभी ठंड पड़ने लगेगी और तेरे बदन पर कोई गरम कपड़ा तक नहीं। मैं तो गया हूं, पता है मुझे। बस कह दिया न नहीं पहुंचेगा, ठंड से अकड़ जाएगा।"

उसकी ये बातें सुनकर स्योम्का के कलेजे पर सांप लोटने लगे। बूढ़ा भी सोच में डूब गया। दोनों सिर झुकाए चुप बैठे रहे।

स्योम्का को तब यह ख़्याल आ रहा था कि कैसे वह ठंड से अकड़ जाएगा। और यह सोचकर उसे दुख हो रहा था कि बेलये में किसी को इसका पता भी नहीं चलेगा। बूढ़ा अपनी सोच सोच रहा था और चुपचाप मूंछें हिलाए जा रहा था।

"तो फिर किधर चला तू?" सहसा अनजान बाबा ने पूछा और उठ खड़ा हुआ।

"मैं तो, बाबा, घर को जा रहा हूं..."

"मैं भी घर चल रहा हूं। चल, इकट्ठे चलते हैं।"

दोनों चुपचाप सड़क पर पहुंचे और पांव घसीटते आगे बढ़ चले।

(५)

सांझ ढल आई थी। दोपहर से बरसते पानी से स्योम्का और बूढ़ा तरबतर हो गए थे।

"चल, भैया मेरे, चल," बूढ़ा उसकी हिम्मत बढ़ा रहा था। "तेज़-तेज़ क़दम बढ़ा। नहीं तो यह शरद सचमुच ही आ धमकेगा और हम अभी पहाड़ों* तक भी नहीं पहुंचे। तब हम क्या करेंगे? तब तो बस अपना काम तमाम हो जाएगा।"

"चल रहा हूं, बाबा।"

---

* आशय उराल पर्वतमाला से है। —सं०

"वैसे ही हमें देर हो गई है। मुझे डर है कहीं पाला * न पड़ने लगे। तब तो बहुत बुरी होगी।"

थकावट के बावजूद स्योम्का भला-चंगा था। हमराही मिल जाने पर वह खुश था और इससे उसका साहस भी बढ़ा था। अब वह निश्चिंत था कि भटकेगा नहीं, कि बाबा उसे ठिकाने तक पहुंचा देगा ; और फिर बातें करना भी अच्छा लगता था। बूढ़ा उसे अपने जन्म स्थान की और साइबेरिया की बातें बताता रहता था, कि कैसे साइबेरिया में सोना खोदा जाता है, कैसा भयानक जाड़ा वहां होता है। बूढ़ा स्योम्का को साइबेरिया की जेलों की और आज़ादी की कहानियां सुनाता, बताता कि वसंत में जब हरी-हरी घास निकलती है, तो कैसे आदमी घर जाने को तड़प उठता, हैं, रात-दिन उसे चैन नहीं मिलता।

"बाबा, हमने काफ़ी रास्ता पार कर लिया, क्या?" स्योम्का उससे पूछता।

"देख रहा है, यहां खाने-वाने को कम मिलता है, मतलब रूस के पास पहुंच रहे हैं। जब पहाड़ पार कर लेंगे, तो वहां और भी कम मिलेगा, इसीलिए तो कहता हूं जल्दी कर! रूस में लोग पैसे के भूखे हैं और तेरी-मेरी जेब ख़ाली है : सो बस, जहां मन आए, सोओ, जो चाहो, खाओ। साइबेरिया में तो, भाई मेरे, लोग भले हैं। पर उनकी भलाई भी हमारे गले में अटकती है। चल, बेटा, जल्दी चल!"

सड़क के एक ओर गाड़ियां रुकी हुई थीं। चारों ओर अंधेरा था और ठंड थी। गाड़ियों के पास जल रहे अलावों की आग पथिकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। गाड़ी से खोल दिए गए घोड़े अंधेरे में मैदान में भटक रहे थे, शरद ऋतु की मुरझाई घास नोच रहे थे। गाड़ियों के बम ऊंचे उठे हुए थे। किसान आग जलाकर हाथ सेंक रहे थे और खाना बना रहे थे।

"भगवान तुम्हें खूब रोटी-नमक दे!" अलाव के पास जाते हुए बूढ़े ने कहा। "ज़रा आग सेंक लेने दो, भाइयो!"

---

* यहां पाला शब्द तापमान शून्य से नीचे चले जाने के अर्थ में प्रयुक्त है। – सं०

"बैठ जाओ," उदासीन स्वरों में जवाब मिला।

बूढ़े ने बैठकर हाथ आग की ओर बढ़ा दिए। स्योम्का भी पास आ गया। उसके गीले कपड़े जल्दी ही गर्म हो गए और पीठ पर मीठी सिहरन दौड़ गई।

"कहां से आ रहे हो?" वहां बैठे लोगों में से एक ने अनजान बाबा के चेहरे को ग़ौर से देखते हुए पूछा।

"बड़ी दूर से आ रहे हैं। घर जा रहे हैं।"

"छोकरा तुम्हारा है क्या?"

"नहीं, रास्ते में मिल गया। साइबेरिया बसने जा रहे थे इसके मां-बाप। अनाथ रह गया है।"

"देखो तो बेचारा कैसे भीग गया है!"

स्योम्का की ओर सबका ध्यान गया। वह आग के बिल्कुल पास ही बैठा था और ठंड से सिकुड़ते हुए देख रहा था कि कैसे अलाव में लकड़ियां जलते हुए ऐंठ रही हैं, कैसे हवा में सफ़ेद धुआं उठ रहा है और कैसे पतीले में पकते खाने में झाग उठ रही है, सूं-सूं हो रही है।

"अच्छा तो अनाथ है?" किसानों ने पूछा और फिर से स्योम्का की ओर देखने लगे।

फिर वे फ़सल की, अपने काम की बातें करने लगे; जब खाना तैयार हो गया, तो खाने लगे।

"खा ले, बच्चे, खा ले," स्योम्का को खाना देते हुए वे कह रहे थे। "देखो तो, कैसे ठंड से ठिठुर रहा है।"

स्योम्का ने भर पेट खाना खाया और आराम करने को लेट गया। गरम खाने के बाद आग के पास लेटना बड़ा अच्छा लग रहा था। लकड़ियां चटख रही थीं, धुएं की और ताज़ी छाल की गंध आ रही थी – बिल्कुल वैसे ही, जैसे उसके गांव बेलये में हुआ करता था। हां, अगर वह घर पर होता, तो कुछ आलू खोद लाता और उन्हें आग में डाल देता। स्योम्का को भूने हुए आलू याद हो आए, जिनकी भीनी-भीनी महक आती है और जिनसे हाथ जलते हैं और जो दांतों तले खस-खस करते हैं।

स्योम्का के सिर के ऊपर तारे चमक रहे थे। बेलये के आसमान में भी

इतने सारे तारे होते थे और इतने साफ़ चमकते थे। स्योम्का का मन कहता था, हाय बेलये कहीं पास ही हो। टांगें थकावट से दुख रही थीं, पीठ व बग़ल को ज़मीन से ठंडक पहुंच रही थी और चेहरे, छाती व घुटनों को आंच की सुहानी गर्मी मिल रही थी।

किसान अभी भी कुछ बातें कर रहे थे और बाबा भी उनके साथ बातें कर रहा था। स्योम्का को उसकी आवाज़ सुनाई दे रही थी : "बड़ा मुश्किल है जीना, भाइयो, बड़ा मुश्किल है ..." किसान भी कह रहे थे कि बड़ा मुश्किल है। फिर उनकी आवाज़ें दबी-दबी सी और धीमी हो गईं, मानो मधुमक्खियां भिनभिना रही हों ... फिर स्योम्का की आंखों के सामने लाल घेरे बनने लगे, फिर चौड़ी नदी बहने लगी और उसके पार था बेलये गांव। स्योम्का नदी में कूदना चाहता था, पर अनजान बाबा ने उसकी टांग पकड़ ली और कहा : "मुश्किल है! मुश्किल है!" इसके बाद फिर से लाल और हरे घेरे बनने लगे, और सब कुछ गडमड हो गया।

स्योम्का सुध-बुध खोए सो रहा था।

(६)

प्रभात वेला में स्योम्का की आंख खुली। आकाश पर बादल तैर रहे थे, बुझे अलाव पर ठंडी हवा के झोंके आते, राख उठाते और सायं-सायं करते हुए उसे मैदान में फैला देते। किसान वहां नहीं थे। अनजान बाबा गठरी बना जमीन पर पड़ा हुआ था।

स्योम्का उठकर बैठ गया।

"बाबा!" उसने बूढ़े को आवाज़ दी।

"किसान कहां गए?" उसके दिमाग में यह सवाल कौंधा और सहसा यह सोचकर वह भयभीत हो गया कि बाबा को कुछ हो तो नहीं गया।

सायं-सायं करती हवा राख उड़ा रही थी; काले, अधजले कुंदों पर जली टहनियों की सरसर हो रही थी और लगता था मानो सारा मैदान कराह रहा है। स्योम्का का डर बढ़ता जा रहा था।

"बाबा!" वह फिर से चिल्लाया, पर उसकी आवाज़ को हवा दूसरी ओर ले गई।

स्योम्का की आंखें मुंद रही थीं, सिर भारी हो गया था और कंधें पर लुढ़क-लुढ़क जाता था। स्योम्का फिर से लेट गया, चारों ओर से उसके कानों में हवा की गूंज आ रही थी। उसे लग रहा था कि डाकुओं ने बाबा को मार डाला है, फिर से कहीं पास ही बेलये गांव दिखा, पर कोई उसे गांव में घुसने से रोक रहा था, उसे पीछे खींच रहा था, वहां खुले मैदान में, जहां गंदी मटमैली बैरक थी। "अच्छा, तू घर जाएगा?!" गुस्से भरी आवाज़ में कोई कह रहा था। फिर कोई गर्म-गर्म श्ची लाया और जबरदस्ती स्योम्का के मुंह में डालने लगा, सिर पर उंडेलने लगा, वह उंडेलता ही जा रहा था, उंडेलता ही जा रहा था, स्योम्का के सिर पर गर्म पहाड़ बन गया, पर वह उंडेलता ही जा रहा था... सिर फूल गया, अंदर आग जल रही थी। स्योम्का की सांस रुक रही थी – फिर उसने आंखें खोलीं। बाबा उसके ऊपर झुका बैठा था और दुख से सिर हिला रहा था।

"क्यों भैया?" उसके चेहरे को छूते हुए बाबा ने कहा और स्योम्का को ऊपर आसमान, सूरज, खिचड़ी दाढ़ी और धंसी हुई आंखें दिखाई दीं। "क्यों, भैया? लगता है, मामला गड़बड़ है।"

"बाबा..." स्योम्का मुश्किल से बोल पाया।

"उठो तो भैया, ज़रा बैठो तो।"

बूढ़े ने उसे उठाकर अपनी गोद में बिठाया और सिर अपनी छाती से लगा लिया।

"क्यों, भैया?"

"कुछ नहीं..." स्योम्का बुदबुदाया।

"थोड़ा होश संभालो, जैसे-तैसे चलना चाहिए... यहीं तो मरना नहीं।"

घंटे भर बाद वे एक दूसरे की कमर में बांहें डाले धीरे-धीरे सड़क पर चल रहे थे। बूढ़ा दृढ़तापूर्वक नपे-तुले क़दम भर रहा था, पर स्योम्का अक्सर लड़खड़ा जाता था।

"शहर भी तो बड़ी दूर है," बूढ़ा कह रहा था। "तुझे तो अस्पताल में

भरती कराना चाहिए। तेरी बात और है। तू जा सकता है। मुझे तो वहां, शहर में शकल नहीं दिखानी चाहिए। ओफ़, कैसी ज़िंदगी है!"

थोड़ी देर बाद स्योम्का रुक गया :

"बाबा, चला नहीं जाता ... थोड़ी देर बैठ लें।"

"चल, उधर पेड़ों तले चलते हैं। वहां कुछ गर्माहट होगी। आ जा, मुझे पकड़ ले। ऐसे! चल, चलें।"

पेड़ों के झुरमुट में वे बैठ गए। अनजान बाबा ने स्योम्का को सिर गोद में रखने को कहा। ख़ुद कुछ टहनियां तोड़कर उसने बिस्तर बना दिया।"

"लेट जा, भैया। लेट जा।"

"बाबा," स्योम्का ने गिड़गिड़ाते हुए कहा। "मुझे अकेले न छोड़ जाना! बाबा!"

वह फूट-फूटकर रो पड़ा। उसके मुंह से एक शब्द भी और नहीं निकला। फिर उसे लगने लगा कि चारों ओर सायं-सायं हो रही है, फिर से कोई उसका सिर पकड़कर खींच रहा है, सब कुछ घूम रहा है, जल रहा है ...

"घर! घर!" स्योम्का के मुंह से अस्पष्ट से बोल फूटे और ज़ोर लगाकर उसने आंखें खोलीं, पर कुछ नहीं दिखा ...

कभी-कभी उसे अपने आस-पास नए, अनजान चेहरे मंडराते लगते, नई बैरक दिखती; कभी मां उसे दिखती, कभी उज़्यूप्का नदी, कभी फिर अनजान लोग और कभी वही बाबा; रात-दिन सब गडमड हो गए और आख़िर स्योम्का ने फिर से आंखें खोलीं।

वह एक कमरे में, नरम बिस्तर पर लेटा हुआ था, उसे ऊपर छत साफ़-साफ़ दिख रही थी, खिड़की के बाहर बूची टहनियोंवाला पेड़ हिल रहा था।

वह भयभीत हो उठा: "फिर बैरक में आ गया?" उसने उठकर भाग जाना चाहा, पर उसका शरीर हिलता न था, सिर मानो सिरहाने से चिपका हुआ था।

"बाबा कहां हैं?" स्योम्का ने आंखें घुमाकर परिचित चेहरा ढूंढ़ना चाहा।

पर न वह बूढ़ा था, न जंगल और न बड़ी सड़क। स्योम्का दुखी हो उठा: क्यों अनजान बाबा उसे छोड़कर चला गया। और उसके सूखे हुए, पीले चेहरे पर आंसू बहने लगे।

(७)

एक दिन, बीमारी के बाद कमज़ोर स्योम्का अस्पताल का चोगा पहने, खिड़की के पास खड़ा था और विचारमग्न निर्जन सड़क को देख रहा था, जहां, हवा सूखी पत्तियों को डबरों के पार उड़ा रही थी। स्योम्का के पीछे अस्पताल का सिपाही देमीदिच खड़ा था, वह भी अपनी सोच में डूबा हुआ बाहर देख रहा था। उसने स्योम्का को बताया था कि कैसे एक बूढ़ा उसे बेहोशी की हालत में यहां लाया था। संयोग से दरोगा भी यहीं खड़ा था। उसने बूढ़े को देखा और बोला: "आ गया, पट्ठे!" बूढ़ा बस वहीं का वहीं बैठ गया। दरोगा बोला: "फिर भाग निकला?" और उसे फ़ौरन पकड़ लिया गया। तीसरी बार वह क़ैद से भागा था। तीसरी बार पकड़ा गया।

ये सब बातें स्योम्का सिपाही से कई बार सुन चुका था। हर रोज़ वह सुबह-शाम ठंडी आहें भरता और सोचता: "हे, भगवान, बाबा को बचा लो।"

"आज उन्हें ले जाया जा रहा है," सिपाही कह रहा था। "देख अभी निकलेंगे।"

थोड़ी देर में स्योम्का को अजीब सी दबी-दबी आवाज़ें सुनाई दीं। फिर कंधों पर बंदूकें डाले सिपाही दिखे और पीछे मटमैले चोगे और गोल टोपियां पहने लोगों की भीड़। उनके हाथों और पैरों पर बेड़ियां खनक रही थीं। भीड़ के दोनों ओर तथा पीछे भी सिपाही चल रहे थे; सब ठंड से ठिठुर रहे थे।

स्योम्का का कलेजा थम गया, वह शीशे से चिपक गया और आंखें फाड़-फाड़कर इस भीड़ को देखने लगा कि कहीं वह जाना-पहचाना चेहरा नज़र आ जाए। सहसा वह बेतहाशा चीखा और शीशे पर मुट्ठियां मारने लगा:

"बाबा! बाबा! बाबा!"

क़ैदियों में उसे अनजान बाबा दिखाई दे गया था, जो बेड़ियों में उलझता हुआ खिड़की के पास से ही गुज़र रहा था।

"बाबा! बाबा!" स्योम्का चिल्ला रहा था। ख़ुशी और भय से वह बदहवास हो गया था।

दस्तक सुनकर कइयों ने मुड़कर देखा। अनजान बाबा ने भी सिर घुमाया। स्योम्का ने देखा कि बाबा ने अपनी धंसी हुई बदरंग आंखों से उसे देखा है, उसने देखा कि बाबा ने गहरी सांस भरी और सिर हिलाया।

स्योम्का के आंसू फूट पड़े, छाती में दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। इस बीच क़ैदी और कॉनवाय के सिपाही आगे बढ़ गए थे और मोड़ के पीछे छिप गए थे। स्योम्का अभी भी मुक्के मारता जा रहा था और चिल्ला रहा था: "बाबा, बाबा!" सिपाही उदासीन स्वर में कह रहा था:

"अबे, रोता क्यों है? काहे का रोना है: तुझे जल्दी ही तेरे घर पहुंचा देंगे। बच्चा है तू, सो तेरा यहां कोई काम नहीं। कह दिया न, लौटा देंगे, अब चिल्ला मत!"

पर स्योम्का फूट-फूटकर रो रहा था और उधर मोड़ के पीछे देखने का जतन कर रहा था, जहां संयोगवश ही उसे मिल गया उसका सच्चा, अनजान मित्र अपनी बेडियां घसीटता चला गया था।